15,17 नवम्बर 2006
जिनवाणी, 100

प्रतिक्रमण की सार्थकता

डॉ. सुषमा सिंघवी

विदुषी लेखिका ने प्रस्तुत लेख में द्रव्य प्रतिक्रमण की अपेक्षा भाव प्रतिक्रमण का महत्त्व स्थापित किया है तथा प्रतिक्रमण के आठ पर्यायवाची शब्दों का विवेचन कर प्रतिक्रमण की सार्थकता सब जीवों के प्रति क्षमाभाव एवं मैत्रीभाव में प्रतिपादित की है। *-सम्पादक*

छूटूँ पिछला पाप से, नवा न बांधूँ कोय।
तो जग में सब जीव से, खमत खामणा होय।।

यह भावना प्रतिक्रमण करने से पूर्ण होती है। व्रती तथा अव्रती दोनों के लिये प्रतिक्रमण का महत्त्व है। अव्रती व्रती बने तथा व्रती की आत्मशुद्धि हो इसके लिए प्रतिक्रमण आवश्यक है।

प्रतिक्रमण छः आवश्यकों में चतुर्थ स्थान पर परिगणित है। भूतकाल में किये सावद्य योग (अशुभ कार्य) की मन, वचन, काया से गर्हा भूतकाल का प्रतिक्रमण है; वर्तमान में संभावित सावद्य योग का मन-वचन-काया से संवर-सामायिक-आराधन वर्तमान प्रतिक्रमण है तथा अनागत काल के सावद्य योग का मन-वचन-काया से परित्याग रूप प्रत्याख्यान भावी प्रतिक्रमण है। सामायिक तथा प्रत्याख्यान की साधना हेतु प्रतिक्रमण आवश्यक है। काल भेद से अशुभ योग के निवृत्ति-कारक प्रतिक्रमण को तीन प्रकार का कह दिया जाता है।

मिथ्यात्व एवं प्रमादवश स्वस्थान (स्वभाव) से परस्थान (विभाव) में गई आत्मा का पुनः स्वभाव में आना प्रतिक्रमण है। दूसरे शब्दों में क्षायोपशमिक भाव से औदयिक भाव में आई आत्मा का पुनः क्षायोपशमिक भाव में लौटना प्रतिक्रमण है।

'प्रति प्रति क्रमणं प्रतिक्रमणं' इस निर्वचन से अशुभ योग से निवृत्त होकर निःशल्य भाव से शुभ योग *में प्रवर्तन करना प्रतिक्रमण (भाव) है। जो अशुभ योग से निवृत्त होकर शुभ योग में रहता है वह प्रतिक्रामक* (कर्त्ता) है तथा जिस अशुभ योग का प्रतिक्रमण होता है वह प्रतिक्रान्तव्य (कर्म) कहलाता है।

प्रतिक्रमण का अर्थ है- अतिचार निवृत्ति क्रिया हेतु तत्पर होकर अतिचार विशुद्धि के लिए मन-वचन-काया से अपने गुरु के समक्ष या अपनी आत्मा के समक्ष प्रत्यर्पण करना।

प्रतिक्रमण करने का अर्थ है- दुष्कृत को मिथ्या करना, पाप का प्रायश्चित्त करना। इसलिये प्रतिक्रमण में 'मिच्छा मि दुक्कडं' (मिथ्या मे दुष्कृतं- मेरा दुष्कृत्य समाप्त हो) का कथन किया जाता है। यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्या दुष्कृत कथन दो प्रकार का होता है- १. द्रव्य से २. भाव से।

द्रव्य मिथ्या दुष्कृत को कुम्भकार के दृष्टान्त से समझा जा सकता है-

एक कुम्हार के घर में साधु ठहरे थे। उनमें से एक बालवय क्षुल्लक उस कुम्हार के घड़ों में अंगुली के बराबर धनुष से कंकर फेंककर छेद करता है। कुम्भकार ने नींद से जागने पर देख लिया और कहा- मेरे बर्तनों में छेद क्यों कर रहे हो? क्षुल्लक कहता है- 'मिच्छामि दुक्कडं' (मिथ्या मे दुष्कृतं- मेरी गलती की मैं निन्दा करता हूँ) और दुबारा घड़ों में छेद करता है और फिर 'मिच्छामि दुक्कडं' मेरा दुष्कृत मिथ्या हो, ऐसा कहता है। इस पर कुम्भकार भी उस क्षुल्लक के कान मरोड़ता है। क्षुल्लक कहता है- मुझे दर्द हो रहा है। कुम्भकार कहता है- 'मिच्छामि दुक्कडं' मेरी गलती की मैं निन्दा करता हूँ। इस प्रकार बार-बार कान मरोड़कर 'मिच्छामि दुक्कडं' करता है। व्यंग्यपूर्वक क्षुल्लक कहता है- यह अच्छा तरीका है पाप की निन्दा करने का। कुम्हार कहता है- आपने भी ऐसा ही 'मिच्छामि दुक्कडं' किया और दुबारा घड़ों को काणा किया। जिस दुष्कृत की निन्दा की, उसी पाप का पुनः सेवन किया। यह प्रत्यक्षमृषावादी (झूठा व्यवहार करने वाला) और मायानिकृति (कपट आचरण) का प्रसंग है। यह द्रव्य प्रतिक्रमण है। इसका विशेष लाभ नहीं है।

भाव 'मिच्छा मि दुक्कडं' को मृगावती के उदाहरण से समझ सकते हैं। भगवान् महावीर स्वामी कौशाम्बी नगरी में पधारे। वहाँ चन्द्र और सूर्य भगवान् महावीर को वन्दन करने विमान से उतरे। वहाँ आर्य उदयन की माता मृगावती 'अभी दिन है' यह जानकर देर तक रुक गई। शेष साध्वियाँ तीर्थंकर भगवान् को वंदन कर लौट गयीं। चन्द्र-सूर्य भी तीर्थंकर को वन्दन कर लौट गये। शीघ्र ही घनी रात हो गई, मृगावती घबराई और आर्या चन्दना के पास गयीं। इस बीच पहले लौटी साध्वियाँ मृगावती की आलोचना करने लगीं। आर्या चन्दना ने पूछा- देर तक कैसे रुकीं? तुम उच्च कुल में उत्पन्न हुई हो, अकेली देर तक ठहरना ठीक नहीं। मृगावती सद्भाव से 'मिच्छा मि दुक्कडं' कहा और आर्या चन्दना के चरणों में गिर पड़ी, आर्या चन्दना उस समय शय्या पर थी तो उन्हें नींद आ गई और इधर मृगावती को अत्यन्त तीव्र संवेग भाव से पश्चात्ताप करते हुए केवलज्ञान हो गया। मृगावती ने जाना कि उधर से साँप आ रहा है और आर्या चन्दना का एक हाथ शय्या पर से नीचे लटक रहा है, अतः साँप काट न जाय इस आशय से बचाने के लिए हाथ शय्या पर रखने लगी। आर्या चन्दना की नींद टूटी, आर्या चन्दना जागकर बोली- तुम अभी तक यहीं हो, अरे! 'मिच्छा मि दुक्कडं' (मुझसे गलती हुई वह निन्दनीय है) नींद के प्रमादवश मैंने चरणों में गिरी तुमको उठाया ही नहीं।

मृगावती बोली- यह सर्प आपको डस न ले, इसलिये आपका हाथ शय्या पर रखा।

चन्दना ने पूछा- साँप कहाँ है? मृगावती दिखाती है, आर्या चन्दना साँप को नहीं देख पाती तो कहती हैं- आर्ये! क्या तुम्हें अतिशय ज्ञान हुआ है, जिससे तुम सर्प देख पा रही हो? मृगावती बोली- जी हाँ। आर्या ने पूछा- यह ज्ञान क्या छद्मस्थ अवस्था में होने वाला है या केवल ज्ञान से संबंधित है। मृगावती बोली- केवलज्ञान से संबंधित। इस पर आर्या चन्दना मृगावती के चरणों में गिरकर कहती है- 'मिच्छामि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुक्कडं' मेरी गलती का मैं पश्चात्ताप करती हूँ और इसी प्रतिक्रमण से आर्या चन्दना को केवलज्ञान हो गया। यह है भाव प्रतिक्रमण। यह दुष्कृत मैंने किया, यह दुष्कृत मैंने कराया, इस दुष्कृत का अनुमोदन किया, ऐसे तीव्र संवेग से अन्तःकरण कम्पायमान हो जाय और भीतर ही भीतर पश्चात्ताप की अग्नि से वह दुष्ट कृत्य भस्म हो जाय, ऐसी स्वनिन्दा का भाव 'भाव-प्रतिक्रमण' है। मृगावती ने भी भाव प्रतिक्रमण किया और आर्या चन्दना ने भी। प्रतिक्रमण में अहंकार और ममकार की निवृत्ति तथा सावद्य योग की निवृत्ति होने से कहा जाता है-

'निन्दामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।'

प्रतिक्रमण को विभिन्न समानार्थक शब्दों से समझाने का प्रयास भद्रबाहु की आवश्यक निर्युक्ति पर हरिभद्र की टीका में किया गया है।

प्रतिक्रमण (पडिकमणं), प्रतिचरण (पडिचरण), परिहरण (पडिहरण), वारण (वारण), निवृत्ति (नियत्ती), निंदा (निंदा), गर्हा (गरिहा), शुद्धि (सोही)। ये आठ प्रतिक्रमण के पर्याय हैं। हरिभद्र की आवश्यक निर्युक्ति टीका में इनका नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन छः निक्षेपों द्वारा निरूपण किया गया है।

प्रतिक्रमण- 'प्रति' उपसर्गपूर्वक 'क्रमु' धातु (गमन करना, कदम बढ़ाना) से 'ल्युट्' प्रत्यय लगकर यह 'प्रतिक्रमण' शब्द बना है जिसका अर्थ है मिथ्यात्ववश हम जिसे अनुकूल या प्रिय मानते हैं उस पाप मार्ग से विपरीत प्रतिकूल प्रतीत होने वाले सम्यक्त्व रूपी श्रेय मार्ग की ओर लौटना प्रतिक्रमण है। मन-वचन-काया से किये गये अशुभ कर्म अप्रशस्त योग हैं, इनका त्याग करे और ध्यान तथा मन-वचन-काया से कृत शुभ पुण्य कर्म प्रशस्त योग है, इस प्रशस्त योग का अभ्यास करे। ध्यान में भी अशुभ ध्यान आर्त्त और रौद्र का त्याग करे तथा धर्म और शुक्ल ध्यान का सतत अभ्यास करे।

प्रतिचरण- 'चर्' धातु गति तथा भक्षण अर्थों में प्रयुक्त होती है। 'प्रति' उपसर्ग पूर्वक 'चर्' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय लगकर प्रतिचरण बना। शुभयोग में गति करना या शुभ योग का आसेवन करना प्रतिचरण है। अतः यह प्रतिक्रमण का पर्याय कहा जाता है।

परिहरण- 'परि' उपसर्ग पूर्वक 'हृ' धातु (हरण करना) से 'ल्युट्' प्रत्यय लगकर 'परिहरण' शब्द बना है। विराधना का परिहार करने वाली प्रतिलेखन आदि विधि परिहरण है। अशुभ योग का परिहरण करने के कारण परिहरण को प्रतिक्रमण का पर्याय माना।

वारणा- वारणा का अर्थ है निषेध। वारण शब्द 'वारि' (वृ+णिच्) (रोकना, निषेध करना) धातु से ल्युट् प्रत्यय लगकर बना है। संयमादि का निषेध अप्रशस्त वारण है तथा प्रमाद का निषेध प्रशस्त वारण है।

निवृत्ति- इसी प्रकार निवृत्ति (नि+वृत्+क्तिन्) भी अशुभ योग से निवृत्ति का पर्याय होने से प्रतिक्रमण का पर्याय कही जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निन्दा- स्वबुद्धि से असंयमित आचरण एवं अप्रशस्त भाव की आलोचना अथवा आत्मसाक्षी से निंदा करना प्रतिक्रमण का पर्याय ही है। चारित्र में लगे दोष का पश्चात्ताप निंदा है जो स्व आत्मा को साक्षी मानकर की जाती है। 'आत्मसाक्षिकी निंदा।'

गर्हा- गुरु आदि की साक्षी में किया गया अपने पाप का प्रायश्चित्त गर्हा है। 'परेषां ज्ञापनं गर्हा'

शुद्धि- इसका अर्थ है विमलीकरण या पवित्रीकरण। ज्ञानादि द्वारा शुद्धि प्रशस्त शुद्धि है। क्रोधादि से शुद्धि मानना अप्रशस्त है।

संक्षेप में कहा जाय तो आठों प्रकार के प्रतिक्रमण का उल्लेख नाना प्रकार से समझाने का उपक्रम है, मूलतः अर्थभेद नहीं है।

प्रतिक्रमण में प्रतिक्रान्तव्य क्या है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए मूलाचार में कहा गया है-

मिच्छत्तं पडिक्कमणं तहेव अस्संजमे पडिक्कमणं।
कसायाणं पडिक्कमणं जोगाण य अप्पसत्थाणं।।

मिथ्यात्व, असंयम (हिंसा आदि), कषाय (क्रोधादि) और अप्रशस्त योग इन चार प्रकार का प्रतिक्रमण होता है। अतः ये प्रतिक्रान्तव्य हैं। मिथ्यात्वादि न करना, न करवाना तथा न अनुमोदन करना प्रतिक्रमण का भाव है। मिथ्यात्वादि विष तुल्य कहे गये हैं, इनका आलम्बन विनाशकारी है। स्वल्पाहार, अल्पवचन, अल्पनिद्रा, अल्प परिग्रह पूर्वक रहने वाले के लिये प्रतिक्रमण सुलभ है।

प्रतिक्रमण सूत्र के प्रारम्भ में अरिहन्त-सिद्ध-साधु और जिनप्ररूपित धर्म इन चार पदों का मंगल प्रस्तुत कर पूरे दिन में किये अतिचार (अनिष्ट आचरण) के प्रतिक्रमण की इच्छा की जाती है। ''इच्छामि ठामि पडिक्कमिउं....।'' श्रमण या श्रावक के लिये अकरणीय अतिचारों की गणना प्रतिक्रमण सूत्र में की गई है। श्रमण के लिए जैसे- मन, वचन, काया से कोई उत्सूत्र (सूत्रविरुद्ध), उन्मार्ग (मार्ग से विपरीत), अकल्प (अन्यायोचित), अकरणीय(अकर्त्तव्य), दुर्ध्यात (आर्त्त- रौद्र का आचरण), दुर्विचिन्तित (अशुभ चिन्तन), अनाचार (अनाचरणीय), अनेष्टव्य (मन से भी अप्रार्थनीय) ऐसा अतिचार करने में आया हो या ज्ञान-दर्शन-चारित्र पालन, श्रुतग्रहण, सामायिक-साधना, तीन गुप्ति की आराधना, चार कषायों का त्याग, पंच महाव्रत पालन, षट्काय के जीवों की रक्षा, सात पिण्डैषणा, आठ प्रवचनमाता, नव ब्रह्मचर्य, दशधर्म पालन में विराधना की हो तो वह सभी पाप मिथ्या हो। यह प्रतिक्रमण सूत्र का सार है।

'इच्छाकारेणं' के द्वारा साधक गमनागमन-अतिचार प्रतिक्रमण करता है। 'पगामसिज्जाए...' के द्वारा साधक त्वग्वर्तनस्थान-अतिचार का प्रतिक्रमण करता है। 'पडिक्कमामि....गोयरच्चरियाए......' के द्वारा साधक गोचर-अतिचार प्रतिक्रमण करता है।

'पडिक्कमामि...सज्झायस्स....'' के द्वारा साधु स्वाध्यायादि-अतिचार प्रतिक्रमण करता है। इसी प्रकार १ से ३३ तक प्रतिक्रमण के वर्णन में एकविध असंयम का प्रतिक्रमण, द्विविध राग-द्वेष का प्रतिक्रमण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिविध मन-वचन-काय, त्रिदण्ड या त्रिशल्य (माया-निदान-मिथ्यादर्शन) का प्रतिक्रमण, चार प्रकार के कषाय, विकथा, संज्ञा आदि तथा चतुर्विध ध्यान का प्रतिक्रमण (प्रथम दो का त्याग, अपर दो स्वीकृत) प्रतिपादित है। टीकाकार हरिभद्रसूरि ने प्रतिक्रमण के लिये शुभ ध्यान के महत्त्व को प्रतिपादित किया है।

प्रतिक्रमण का प्रयोजन एवं परिणाम समस्त जीवयोनि से क्षमा तथा प्राणिमात्र से मैत्री है कि मैं प्रत्येक जीव/सत्त्वमात्र से क्षमायाचना करता हूँ, सभी जीव मुझे क्षमा करें, किसी को अशांति नहीं हो। मेरी मैत्री सभी जीवों से है, मेरा किसी से वैर नहीं है। इस प्रकार मैं मन-वचन-काया से प्रतिक्रमण द्वारा अपने दुष्कृत्यों की आलोचना, निन्दा, गर्हा करता हूँ और चौबीस तीर्थंकरों को वंदना करता हूँ।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ।।
एवमहं आलोइय निन्दिय गरहिय दुगंछियं सम्मं।
तिविहेण पडिक्कंतो वंदामि जिणं चउवीसं।।

-निदेशक, वर्द्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
क्षेत्रीय केन्द्र, जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org